डा० सत्यकाम वर्मा

वर्णों का विभाजन[1]

आज के भाषा-विषयक अध्ययन की जो महत्त्वपूर्ण देनें मानी जाती हैं, उनमें से वर्णभागों या अल्लाफोन्स की स्वीकृति भी एक है. वर्ण को आधुनिक परिभाषा में 'फोनीम' कहा जाता है. जब कोई ध्वनि वर्ण की पूर्णस्थिति तक न जाकर बीच में ही रह जाती है, उसे 'अल्लाफोन्स' के नाम से स्मरण किया जाता है. आज जिसे वर्तमान भाषा-विज्ञान की अपूर्व देन समझा जाता है. यहाँ हम यह दिखाने का प्रयास करेंगे, कि उसका अध्ययन कितनी गहराई के साथ प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने किया था.

कुछ अवधेय परिभाषाएं—इस विषय में सबसे प्रथम सहायक परिभाषा हमें यास्क के निरूक्त में मिलती है. धातुभिन्न किसी 'पदभाग' की केवल वर्णसाम्य के आधार पर उसने कल्पना की है : 'पदेभ्यो पदान्तरार्धान् संचस्कार' (निरुक्त). पदान्तर या पदान्तरार्ध संज्ञा भाषा, वैज्ञानिक महत्त्व की है. इसी समय के प्रातिशाख्यों में एक नई परिभाषा 'अपिनिहिति' के रूप में सामने आई. 'आत्मा' 'इध्य' आदि शब्दों में जहां भी संधि-नियमों के विरुद्ध-कार्य होता दिखाई दिया (और बाद में अपभ्रंश आदि में उनका स्थानान्तरण किसी और वर्ण द्वारा हुआ), वहां ही उन्होंने 'अपिनिहिति' के रूप में एक अस्पष्टोच्चरित ध्वनि की अन्तर्वर्त्तिनी सत्ता को स्वीकार कर लिया. यह पाणिनि के 'वॉयड्' या 'जीटो' से भिन्न स्थिति है. पाणिनि ने ऐसी अपूर्ण स्थिति कुक्, टुक्, डमुट्, धुट् आदि आगमों की स्वीकार की है, जिनके द्वारा आगत ध्वनियाँ सुनाई न देकर भी अपना प्रभाव छोड़ती दिखाई देती हैं.[2]

परन्तु पाणिनि इस विषय में दो परिभाषाएँ ऐसी देते हैं, जिन पर विचार अत्यावश्यक हो जाता है. ये हैं—ह्रस्वादेश और सवर्ण. 'ह्रस्वादेश' से हमें केवल यही पता चलता है कि वर्ण अपनी स्थिति और मात्रा आदि बदल सकते हैं. किन्तु 'सवर्ण' की परिभाषा हमें कुछ और ही संकेत करती है. आस्य और प्रयत्न की समानता के आधार पर सवर्ण (तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्) सिद्ध करने के बाद, जब वे प्रत्येक व्यंजनवर्ग को सवर्ण (अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) कहते हैं, तब समस्या यह उठती है कि क्या क्-ख्-ग्-घ्-ङ् आदि में भी कुछ वैसी ही समानता है, जैसी अ-आ-अं आदि में पाई जाती है ? पाणिनि इसका उत्तर 'हाँ' में ही देते हैं. तो, क्या यह समानता केवल मुखगत उच्चारणसाम्य के कारण ही है ? सवर्ण का अर्थ है समान वर्ण. अर्थात् इन तथाकथित सवर्णों में वर्णात्मक या ध्वन्यात्मक साम्य भी मूलतः निहित होता है. तथाकथित वर्ग के पांचों वर्णों में 'क्' की-सी ध्वनि का कुछ अंश अवश्य उपस्थित रहता है. फिर यदि 'कण्ठ्य' होने के कारण भी उनकी ध्वन्यात्मक समानता स्वीकार की जाए, तब भी उनमें 'ध्वनि-तरंगों' की कुछ अंश तक समानता स्वीकार करनी पड़ेगी, उन सब की ध्वनि-तरंगें एक ही स्थान से जो उठती हैं !

परन्तु, सवर्णों और 'ह्रस्वादेशों' की इस समस्या को अधिक स्पष्ट करने का श्रेय पतंजलि को ही मिलता है. उन्होंने ही हमें सर्वप्रथम 'वर्णैकदेश' और 'उत्तरपदभूयस्' जैसी वैज्ञानिक परिभाषाएँ दीं. ह्रस्वादेश हों, सन्धिनियम हों, सन्ध्यक्षरों

---

१. २६ वें अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्या-सम्मेलन में—लेखक द्वारा पढ़े गए एक लेख के आधार पर.

२. इसकी विशेष चर्चा देखें लेखक के लेख-वर्णभाग में, 'भारतीय साहित्य', जनवरी—१९६१ ई०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा सम्प्रसारणों की समस्या हो—पतंजलि उन सब की व्याख्या 'वर्णैकदेश' की परिभाषा के द्वारा करते हैं. वर्ण में 'एकदेश' की स्वीकृति आज के 'अल्लाफोन्स' की बात को अधिक स्पष्ट करती है, 'उत्तरपदभूयस्' से भी इतना ही पता चलता है कि गुणस्वरों या वृद्धिस्वरों में स्पष्टतः 'उत्तरपद' और 'पूर्वपद' जैसी स्थिति खोजी जा सकती है.

भर्तृहरि की चमत्कारी देन—किन्तु, भर्तृहरि ने अपने महान् ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' में इस समस्या को अत्यधिक वैज्ञानिक आधार पर लिया है. उन्होंने वहाँ जो चमत्कारपूर्ण परिभाषाएँ दी हैं, वे हैं—'वर्णभाग' और 'वर्णान्तर सरूप'. उनकी इन परिभाषाओं को केवल काल्पनिक कहकर टाला नहीं जा सकता. इनके प्रतिरूप ही वे पद-सम्बन्धी समानान्तर परिभाषाएँ भी देते हैं. ये हैं—'पदभाग' और 'पदान्तरसरूप'.

वर्णान्तरसरूपाश्च वर्णभागा अवस्थिताः । पदान्तरसरूपाश्च वर्णभागा अवस्थिताः ॥—वा० २. ११.

'वर्णभाग' की बात को तो वे काफी विस्तार से उठाते हैं. एक स्थान पर वे स्पष्ट कहते हैं :

पदानि वाक्ये तान्येव, वर्णास्ते च पदे यदि । वर्णेषु वर्णभागानां भेदः स्यात् परमाणुवत् ॥—वा० २. २८.

भागानामनुपश्लेषान्नवर्णो न पदं भवेत् । तेषामव्यपदेश्यत्वात्किमन्यदपदिश्यताम् ॥—वा० २. २९.

'वर्ण' बनने के लिये स्पष्ट ही वर्णभागों के उपश्लेष की आवश्यकता है. उनके उपशेलेष के विना वर्ण की स्थिति ही सम्भव नहीं. इस धारणा का विरोध करने वाले कदाचित् भर्तृहरि के निम्न श्लोक को उद्धृत करेंगे :

'पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च । वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥—वा० १. ७३.

यहां वर्णावयवों की सत्ता का प्रत्यक्ष निषेध-सा दिखाई देता है. परन्तु यही निषेध 'पदो' पर लागू होता है. अर्थात् भर्तृहरि स्पष्ट घोषित करते हैं कि जिस प्रकार की स्थिति वाक्य में पदों की है, उसी प्रकार की स्थिति पदो में वर्णों की, और वर्णों में वर्णभागों या वर्णावयवों की है. वस्तुतः वे उपरोक्त सभी प्रसंगों में अर्थ और वाक्यार्थ की अखण्डता की चर्चा कर रहे हैं उनका कथन यह है कि यदि वाक्य का विभाग पदों में सम्भव है, तो पदों को वर्णों में विभक्त मानना होगा और वर्णों को उन वर्णभागों से बना मानना होगा, जो परमाणुवत् अनन्त और सूक्ष्म हैं. उनका वाक्यार्थ अविभाज्य है. अतः वे पदार्थों की पृथक् सत्ता में विश्वास नहीं रखते. परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि 'सुप्तिङन्तं पदम्' की पाणनि की परिभाषा व्यर्थ हो जाती है और पदों की सत्ता ही वाक्य में सिद्ध नहीं होती. यदि पदों की स्थिति वाक्य में होने पर भी उसकी एकता और एकार्थता रक्षित रह सकती है, तब वर्णभागों की स्थिति रहने पर भी वर्ण की एकता कायम रह सकती है.[1] और यदि आवश्यकता आ पड़े तो :

वाक्यार्थस्य तदेकोऽपि वर्णः प्रत्यायकः क्वचित् ।—वा० २. ४५.

दोनों में भेद—'वर्णान्तरसरूप' और 'वर्णभाग' संज्ञाओं को हमने पृथक् माना है. भर्तृहरि ने भी इनका पृथक् उल्लेख किया. 'वर्णभाग' को वर्तमान 'अल्लाफोन्स' का समकक्ष स्वीकार किया जा सकता है, जब कि 'वर्णान्तरसरूप' की उससे कुछ स्थूल स्थिति है. इसमें कुछ वर्णभाग मिलकर 'सवर्णभाग' की-सी स्थिति में आते हैं. इस 'वर्णान्तरसरूपकता' के आधार पर ही सवर्णों का आविर्भाव सम्भव माना जाता है, जब कि वर्णभाग किसी भी वर्ण की शूक्ष्मतम विभाज्य स्थिति को ही सूचित करता है. यहीं भर्तृहरि यह भी स्पष्ट करते हैं कि इन्हें स्पष्टतः पहचाना नहीं जा सकता—**'प्रविवेको न कश्चन'**.

भाषा विज्ञान—आज के भाषा-विज्ञानी भी इस स्थिति को स्वीकार करने लगे हैं. विविध यन्त्रों के सहारे उन्होंने ध्वनि-तरंगों और ध्वनिभागों को निश्चित करने का प्रयास किया है, पर इस विषय में कुछ निश्चित विभाजक रेखाएँ नहीं खींच सके हैं. 'अल्लाफोन्स' विषयक उनकी देन की चर्चा हो चुकी है. प्रो० जोसुटाव्हाटमाऊ, पौटर साइमन और दूसरे कुछ अमरीकी भाषाविदों ने 'साउण्ड-वेव' अर्थात् 'ध्वनि-तरंगों' को भी पहचानने का प्रयास किया है.
पर अधिक अच्छा हो कि वे इन परिभाषाओं को विचार में रखकर बढ़ें.

---

१. विस्तृत चर्चा के लिये देखें लेखक के शोध-प्रबंध—'भाषातत्त्व और वाक्यपदीय' के पृ० १७, तथा अनुच्छेद २४ (अ) एवं ७१०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org